हुसैनआरा खातून और अन्य

बनाम

गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना

(Hussainara Khatoon and Others

V.

Home Secretary, State of Bihar, Patna)

(19 अप्रैल, 1979)

(न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० पी० सेन)

संविधान—अनुच्छेद 21—विचारणाधीन कैदियों को उस कालावधि से भी अधिक समय तक कारावास में रखा जाना जिस अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्धि होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था, संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2)—धारा 167(2) का परन्तुक—यदि विचारणाधीन कैदी, यथास्थिति, 90 या 60 दिन तक कारावास में रह चुका हो, तो उसे और आगे न्यायिक अभिरक्षा में रखे जाने का आदेश देने से पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणाधीन कैदी को यह बता दिया जाना चाहिए कि वह जमानत पर उन्मोचित होने का हकदार है।

संविधान—अनुच्छेद 21 और 39-क—ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था किए जाने का अधिकार है जो निर्धनता या सम्पर्क वर्जित स्थिति के कारण किसी विधि व्यवसायी की सेवा प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रत्यर्थी बिहार राज्य में बहुत बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे लम्बी कालावधियों से विचारणाधीन कैदियों के रूप में कारावास में बन्द थे।

1979(4) eILR(PAT) SC 1

इनमें से कुछ विचारणाधीन कैदी उस अवधि से भी अधिक समय तक कारावास में बन्द थे जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर कारावास का दण्ड दिया जा सकता था। ये कैदी अपनी निर्धनता के कारण अपनी जमानत देने और अपने बचाव के लिए वकील की सेवा प्राप्त करने में असमर्थ थे। उनके विषय में समाचारपत्र में विवरण प्रकाशित होने पर प्रस्तुत पिटीशन फाइल किया गया। दण्ड की अधिकतम सीमा से भी अधिक समय तक कारावास में रह चुके विचारणाधीन कैदियों की उन्मुक्ति का आदेश देते हुए और यथास्थिति, 90 या 60 दिन तक कारावास में रह चुके विचारणाधीन कैदियों को और आगे न्यायिक अभिरक्षा में रखे जाने का आदेश देने से पूर्व मजिस्ट्रेट द्वारा उन्हें यह बता दिए जाने का आदेश देते हुए कि वे जमानत पर उन्मोचित होने के हकदार हैं तथा प्रत्यर्थी को निर्धन विचारणाधीन कैदियों के लिए निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था करने का निदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित—अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जो ऐसे व्यक्तियों के प्रवर्ग में आते हैं जो अधिकतम अवधियों से भी अधिक कालावधियों तक उनका विचारण आरम्भ हुए बिना ही, निरुद्ध रहे हैं। हम निदेश देते हैं कि उन्हें तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए, क्योंकि उनके निरोध को जारी रखना स्पष्ट रूप से विधि-विरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण है। (पैरा 1)

कुछ पिटीशनरों और अन्य विचारणाधीन कैदियों को अनेक बार मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया है और मजिस्ट्रेट निरन्तर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषण के आदेश देते रहे हैं। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इन असंख्य अवसरों में से प्रत्येक अवसर पर जब इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया जाता था और मजिस्ट्रेटों ने प्रतिप्रेषण के आदेश दिए थे, तब उन्हें इन विचारणाधीन कैदियों को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने की आवश्यकता के बारे में अपनी बुद्धि का प्रयोग करना होगा। इस बात पर भी बहुत सन्देह है कि गिरफ्तार किए जाने की तारीख से, यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन की समाप्ति पर विचारणाधीन कैदियों का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाया गया था कि वे धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन जमानत पर उन्मोचित किए जाने के हकदार हैं। जब किसी विचारणाधीन कैदी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है और वह, यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन तक निरुद्ध रह चुका है, तब मजिस्ट्रेट को न्यायिक अभिरक्षा में आगे प्रतिप्रेषण का आदेश देने से पूर्व

1979(4) eILR(PAT) SC 1

विचारणाधीन कैदी को यह बता देना चाहिए कि वह जमानत पर उन्मोचित किए जाने का हकदार है। राज्य सरकार को भी यह चाहिए कि वह अपने खर्चे पर विचारणाधीन कैदी के लिए वकील की व्यवस्था इस दृष्टि से करे जिससे कि धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन ऐसा कैदी अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए जमानत के लिए आवेदन करने में समर्थ हो सके। मजिस्ट्रेट को भी यह भी सुनिश्चित करने की सावधानी बरतनी चाहिए कि विचारणाधीन कैदी को राज्य के खर्चे पर वकील की सहायता प्राप्त करने सम्बन्धी उसका अधिकार उसके लिए सुनिश्चित हो सके है। (पैरा 3)

ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति को, जो दरिद्रता, निर्धनता या सम्पर्क-वर्जित स्थिति जैसे कारणों से वकील रखने में और विधिक सेवाएँ प्राप्त करने में असमर्थ है, राज्य द्वारा निःशुल्क विधि सेवाओं की व्यवस्था करवाने का सांविधानिक अधिकार है और राज्य का यह सांविधानिक परमादेश है कि वह, यदि न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित हो तो, ऐसे अभियुक्त व्यक्ति के लिए वकील की व्यवस्था करे। इस बात का पता नहीं है कि राज्य सरकार ने ऐसे व्यक्तियों के लिए जिन पर ऐसे अपराधों का आरोप है जिनमें स्वाधीनता का वंचन सम्भव है और जो दरिद्रता या निर्धनता के कारण वकील रखने में असमर्थ हैं, निःशुल्क विधिक सेवाओं की व्यवस्था करने के प्रयोजन से किसी तन्त्र की स्थापना की है या नहीं। इस सांविधानिक बाध्यता की पूर्ति और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि संविधान के अधिनियम की तारीख से 30 वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं और किसी भी राज्य सरकार के लिए संविधान के इस समादेश का पालन न करने के लिए बहाना बना सकना सम्भव नहीं है। (पैरा 6)

आरम्भिक अधिकारिता : 1979 का रिट पिटीशन संख्या 57.

पिटीशनर की ओर से — श्रीमती के० हिंगोरानी

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री यू० पी० सिंह और एस० एन० झा

अभिलेख-अधिवक्ता

पिटीशनर की ओर से — श्रीमती के० हिंगोरानी

प्रत्यर्थी की ओर से — श्री यू० पी० सिंह

न्यायाधिपति पी० एन० भगवती ने अपनी ओर से तथा न्यायाधिपति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और ए० पी० सेन की ओर से न्यायालय का निम्नलिखित आदेश 19 अप्रैल, 1979 को दिया।

आदेश

न्यायाधिपति भगवती—

यह रिट पिटीशन हमारे समक्ष अतिरिक्त निदेशों के लिए पुनः आया है। बिहार राज्य की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री० यू० पी० सिंह ने हमें सूचित किया है कि हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने आदेश में जो निदेश दिए थे, उनके अनुसरण में बिहार राज्य ने पहले ही 70 विचारणाधीन कैदियों को उन्मोचित कर दिया है, जिनके नाम श्रीमती हिंगोरानी द्वारा 9 मार्च, 1979 को फाइल की गई सारणी में दर्शित थे। यह बड़े खेद की बात है कि ये विचारणाधीन कैदी उन कालावधियों से भी अधिक तक विचारण के बिना जेल में रहे जिन अधिकतम अवधि के लिए उन्हें दोषसिद्ध किए जाने पर दण्डित किया जा सकता था। हमारी समझ में यह नहीं आता कि इन अभागे व्यक्तियों को विचारण के बिना अयुक्तियुक्त रूप से इतनी लम्बी कालावधियों के लिए निरुद्ध रखने का राज्य के पास कौन-सा नैतिक या सदाचार विषयक न्यायौचित्य हो सकता है। हमें इस बात से सन्तोष हुआ है कि वे एक बार पुनः स्वतन्त्रता की सांस ले सकेंगे। किन्तु हम यह पाते हैं कि अभी भी अनेक ऐसे विचारणाधीन कैदी हैं जो ऐसे व्यक्तियों के प्रवर्ग में आते हैं जो अधिकतम अवधियों से भी अधिक कालावधियों तक, उनका विचारण आरम्भ हुए बिना ही, निरुद्ध रहे हैं। श्रीमती हिंगोरानी ने 16 अप्रैल, 1979 को रिट पिटीशन की सुनवाई के समय हमारे समक्ष एक दूसरी सारणी फाइल की थी जिसमें उन विचारणाधीन कैदियों में से कुछ के नाम और विशिष्टियां दी गई थीं जिन्हें हमारे द्वारा दिए गए पूर्ववर्ती आदेश का फायदा अभी तक नहीं मिला है। ऐसे 59 विचारणाधीन कैदी हैं जिनके नाम और विशिष्टियां इस सारणी में उपवर्णित हैं और हम निदेश देते हैं कि उन्हें तत्काल उन्मोचित कर दिया जाए क्योंकि उनके निरोध को जारी रखना स्पष्ट रूप से विधि-विरुद्ध और संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का अतिक्रमण है। अनेक अन्य विचारणाधीन कैदी भी हैं जिन पर एक से अधिक अपराधों का आरोप है और यदि हम इस उपधारणा के आधार पर अग्रसर हों कि राज्य उनकी दोषसिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो जाएगा और उन्हें अधिकतम दण्ड दिया जाएगा और ऐसे दण्ड न्यायालय द्वारा अनुसृत सामान्य

प्रक्रिया के अनुसार समवर्ती नहीं होंगे, बल्कि क्रमवर्ती होंगे, तो भी वे उस कुल कारावास को पहले ही भुगत चुके हैं जो उन्हें दिया जा सकता था और उन्हें आगे निरुद्ध रखने का कोई कारण नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि सामान्यतया एक से अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्धि होने पर अधिरोपित दण्ड समवर्ती होते हैं और यदि हम इस उपधारणा पर अग्रसर हों, जो अधिक वास्तविक है तो यह पाया जाएगा कि ऐसे अनेक विचारणाधीन कैदी हैं जो उस अधिकतम अवधि से अधिक कालावधियों तक जेल में पहले ही रह चुके हैं जो उस दशा में उन पर अधिरोपित की जा सकती थी, यदि उन्हें उन सभी अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता जिनका उन पर आरोप है। हमने श्रीमती हिंगोरानी से प्रार्थना की है कि वह विचारणाधीन कैदियों के उपर्युक्त दो प्रवर्गों को पृथक् रूप से दर्शित करते हुए सारणी तैयार करे ताकि हम रिट पिटीशन की अगली सुनवाई के समय उनके सम्बन्ध में समुचित आदेश पारित कर सकें। राज्य सरकार की ओर से उपस्थित श्री० यू० पी० सिंह इस सारणी को तैयार करने में श्रीमती हिंगोरानी की सहायता करेंगे, क्योंकि श्रीमती हिंगोरानी ने इस लोक हित की मुकदमेबाजी को सार्वजनिक कर्तव्य के रूप में लिया है और इसलिए उसके साधन सीमित होने अनिवार्य हैं।

2. हमें सूचित किया गया है कि विचारणाधीन कैदियों में कुछ ऐसे हैं जो पागल या विकृतचित्त व्यक्ति हैं। यह समझना कठिन है कि ऐसे व्यक्ति को अन्य विचारणाधीन कैदियों के साथ एक ही जेल में कैसे रखा जा सकता था। हम रिट पिटीशन की अगली सुनवाई से पूर्व फाइल किए जाने वाले शपथपत्र द्वारा राज्य सरकार से यह जानना चाहेंगे कि इन व्यक्तियों को किन परिस्थितियों में विचारणाधीन कैदियों के रूप में साधारण जेलों में रखा गया है और राज्य सरकार की उनके सम्बन्ध में क्या करने की प्रस्थापना है। श्रीमती हिंगोरानी इन व्यक्तियों के नाम और विशिष्टियां दर्शित करने वाली सूची तैयार करेंगी और राज्य सरकार की ओर से श्री यू० पी० सिंह इस मामले में आवश्यक सहायता देंगे। श्रीमती हिंगोरानी रिट पिटीशन की अगली सुनवाई के समय सूची फाइल कर सकती हैं ताकि हम विचारणाधीन कैदियों के इस प्रवर्ग के सम्बन्ध में अन्तिम आदेश पारित कर सकें।

3. हम पाते हैं कि हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने आदेश जो निदेश दिए थे, उनके अनुसरण में पटना केन्द्रीय जेल के अधीक्षक भागेश्वरी प्रसाद पाण्डे ने, उन तारीखों को दर्शित करने वाली सारणी सहित जिनको पिटीशनर संख्या 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 और 17 को, जो

पटना केन्द्रीय जेल में निरुद्ध थे, स्वीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित किए जाने से पूर्व दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परन्तुक के अनुपालन में मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया था, तारीख 4 अप्रैल, 1979 वाला शपथपत्र फाइल किया है। इसी प्रकार का तारीख 4 अप्रैल, 1979 वाला मुजफ्फरपुर जेल के अधीक्षक प्रदीप कुमार गांगुली ने उन तारीखों को दर्शित करने वाले चार्ट सहित फाइल किया है, जिनको पिटीशनर संख्या 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16 और 18 को, जो पहले मुजफ्फरपुर केन्द्रीय जेल में निरुद्ध थे, स्वीय बन्धपत्र के आधार पर उन्मोचित किए जाने से पूर्व धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षा का पालन करते हुए मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया था। रांची केन्द्रीय जेल के अधीक्षक भुवन मोहन मुण्डा ने भी उन तारीखों को दर्शित करने वाली सारणी सहित तारीख 12 अप्रैल, 1979 वाला शपथपत्र फाइल किया है जिनको तारीख 9 मार्च, 1979 वाले हमारे आदेश में निर्दिष्ट कुछ विचारणाधीन कैदियों को धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षा का पालन करते हुए मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया था। इन सारणियों से यह स्पष्ट है कि कुछ पिटीशनरों और अन्य विचारणाधीन कैदियों को, जिनका, इन सारणियों में उल्लेख किया गया है, अनेक बार मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया गया है और मजिस्ट्रेट निरन्तर न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषण के आदेश देते रहे हैं। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इन असंख्य अवसरों में से प्रत्येक अवसर पर जब इन विचारणाधीन कैदियों को मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया जाता था और मजिस्ट्रेटों ने प्रतिप्रेषण के आदेश दिए थे, तब उन्होंने इन विचारणाधीन कैदियों को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने की आवश्यकता के बारे में अपनी बुद्धि का प्रयोग किया होगा। हमें इस बात पर भी बहुत संदेह है कि गिरफ्तार किए जाने की तारीख से यथास्थिति 90 दिन या 60 दिन की समाप्ति पर विचारणाधीन कैदियों का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाया गया था कि वे धारा 167 की उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन जमानत पर उन्मोचित किए जाने के हकदार हैं। जब किसी विचारणाधीन कैदी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है और वह, यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन तक निरुद्ध रह चुका है, तब मजिस्ट्रेट को न्यायिक अभिरक्षा में आगे प्रतिप्रेशण का आदेश देने से पूर्व विचारणाधीन कैदी को यह बता देना चाहिए कि वह जमानत पर उन्मोचित किए जाने का हकदार है। राज्य सरकार को यह भी चाहिए कि वह अपने खर्चे पर विचारणाधीन कैदी के लिए वकील की व्यवस्था इस दृष्टि से करे जिससे कि धारा 167 की

उपधारा (2) के परन्तुक (क) के अधीन ऐसा कैदी अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए जमानत के लिए आवेदन करने में समर्थ हो सके और मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करने की भी यह सावधानी बरतनी चाहिए कि विचारणाधीन कैदी को राज्य के खर्चे पर वकील की सहायता प्राप्त करने सम्बन्धी उसका अधिकार उसके लिए सुनिश्चित हो सके और उसे जमानत के लिए किए गए आवेदन के सम्बन्ध में उन्हीं मार्गदर्शनों के अनुसार विचार करना चाहिए जो कि तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले हमारे आदेश में अधिकथित हैं। हमें आशा और विश्वास है कि देश में प्रत्येक मजिस्ट्रेट और प्रत्येक राज्य सरकार न्यायालय के इस परमादेश के अनुसार कार्य करेगी। राज्य सरकार और मजिस्ट्रेटों की यह सांविधानिक बाध्यता है और हमें इस बात में सन्देह नहीं है कि यदि दृढ़ता से इसका पालन किया जाएगा तो विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में स्थिति में काफी सुधार हो जाएगा और विधि के शासन का समुचित पालन होगा।

4. राज्य सरकार ने बिहार सरकार के पुलिस अधीक्षक (सी० आई० डी०) बी० श्रीनिवासन का शपक्षपत्र भी फाइल किया है, जिसके उपाबन्ध (1) में 31 दिसम्बर, 1978 को राज्य के प्रत्येक उपखण्ड में पुलिस द्वारा अन्वेषण के लिए लम्बित मामलों की संख्या के सम्बन्ध में विशिष्टियां दी गई हैं और उपाबन्ध (2) में 6 मास से अधिक से अन्वेवण के लिए लम्बित मामलों की संख्या के सम्बन्ध में विशिष्टियां दी गई हैं। उन उपाबन्धों से यह दर्शित होता है कि बड़े अपराधों से सम्बन्धित कुल 10,339 मामले और छोटे अपराधों से सम्बन्धित 17,687 मामले 31 दिसम्बर, 1978 को बिहार राज्य में अन्वेषण के लिए लम्बित थे और इनमें बड़े अपराधों से सम्बन्धित 5,835 मामले और छोटे अपराधों से सम्बन्धित 7,228 मामले 6 मास से अधिक की कालावधि से अन्वेषण के लिए लम्बित थे। यह बड़े खेद की बात है कि इतनी बड़ी संख्या में मामले छह मास से अधिक की कालावधि से अन्वेषण के लिए लम्बित हैं और छोटे अपराधों से सम्बन्धित ऐसे मामलों की संख्या सात हजार से भी अधिक है। यह समझना कठिन है कि सात हजार से भी अधिक की संख्या में छोटे अपराधों से सम्बन्धित मामले छह मास से अधिक से अन्वेषण के लिए क्यों लम्बित पड़े हैं। निस्सन्देह यह सही है कि बी० श्रीनिवासन् ने अपने शपथपत्र से उपाबद्ध कथन में कारण बताने का प्रयास किया है, किन्तु जहां तक छोटे अपराधों के सम्बन्ध में अन्वेषण का सम्बन्ध है, विशेष रूप से इन कारणों की विधिमान्यता

के बारे में हमारा समाधान नहीं हुआ है। बी० श्रीनिवासन् द्वारा अपने कथन में बताया गया एक कारण यह है कि 10 प्रतिशत मामलों में विशेषज्ञों की राय प्राप्त होने में विलम्ब के कारण अन्वेषण रुका हुआ है। हम इस कारण को उचित नहीं मानते। हमारी समझ में यह नहीं आता कि राज्य सरकार अधिक विशेषज्ञ क्यों नहीं नियोजित कर सकती या अधिक संख्या में परीक्षण प्रयोगशालाएं या न्याय सम्बन्धी अधिक प्रयोगशालाएं क्यों नहीं स्थापित कर सकती। राज्य में एक से अधिक सीरम विज्ञानियों का होना भी आवश्यक है। यह ऐसी स्थिति है जिसका उपचार राज्य सरकार निश्चय ही तत्काल कार्यवाही करके कर सकती है। अनेक अन्य उपाय भी हैं जो राज्य सरकार द्वारा अन्वेषण तन्त्र की गति को बढ़ाने के प्रयोजन से किए जा सकते हैं किन्तु ऐसे किसी उपाय का सुझाव देना या सिफारिश करना इस न्यायालय के लिए समुचित नहीं होगा क्योंकि इस न्यायालय के पास ऐसा करने के लिए अपेक्षित सामग्री नहीं है और इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा नियुक्त राष्ट्रीय पुलिस आयोग इस प्रश्न पर विचार कर रहा है और वह यह विचार कर रहा है कि अन्वेषण प्रक्रिया में शीघ्रता लाने और इसमें गुणात्मक सुधार करने के प्रयोजन से क्या कदम उठाए जाने चाहिएं और क्या उपाय किए जाने चाहिएं। किन्तु यदि हम उस मंद और लगभग सुस्त रीति पर अपना आश्चर्य और दुःख प्रकट नहीं करेंगे जिससे बिहार राज्य में अपराधों का अन्वेषण किया गया प्रतीत होता हैं, तो हम अपने कर्तव्य में असफल होंगे। अब समय आ गया है कि बिहार राज्य अपने अन्वेषण-तंत्र में आमूल-चूल सुधार करने और उसे दोषरहित बनाने के लिए कदम उठाए जिससे किसी भी अन्वेषण में उसके लिए अपेक्षित न्यूनतम समय से अधिक समय न लगे और न्यायिक प्रक्रिया अनावश्यक विलम्ब के बिना चालू रखी जा सके।

5. हमने तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने आदेश द्वारा यह निदेश दिया था कि अगली तारीख को जब जमानतीय अपराधों से आरोपित विचारणाधीन कैदी मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किए जाएं, तब राज्य सरकार उनके पक्ष में जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन से अपने खर्च पर वकील की व्यवस्था करे और यदि जमानत के लिए कोई आवेदन किया जाए तो, वे मजिस्ट्रेट उसका निपटारा तारीख 12 फरवरी, 1979 वाले हमारे निर्णय में उपवर्णित विस्तृत मार्गदर्शनों के अनुसार करेंगे। हमें श्री यू० पी० सिंह ने बताया है कि राज्य सरकार ने जिला मजिस्ट्रेटों को इस भाव के निदेश दे दिए हैं किन्तु हमें यह पता नहीं है कि क्या और किस हद तक उन निदेशों

1979(4) eILR(PAT) SC 1

का अनुपालन किया गया है और ऐसे विचारणाधीन कैदियों के लिए जिन पर जमानतीय अपराध करने का अभियोग है, उनकी ओर से जमानत के लिए आवेदन करने के प्रयोजन से राज्य के खर्चे पर वकील की व्यवस्था की गई है या नहीं। हम चाहते हैं कि राज्य सरकार यह कथन करते हुए शपथपत्र फाइल करे। ऐसे कितने विचारणाधीन कैदियों के लिए, जिन पर जमानतीय अपराध करने का अभियोग है और जो 1 फरवरी, 1979 को 18 मास से अधिक की कालावधि तक जेल में रह चुके हैं, राज्य के खर्चे पर वकील की व्यवस्था की गई है और हमारे द्वारा दिए गए निदेशों के अनुसार उन्हें जमानत पर उन्मोचित किया गया है या नहीं। राज्य सरकार उन विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में भी, जो कारावास की उस अधिकतम अवधि को आधी से अधिक कालावधि तक जेल में रह चुके हैं, जिसके लिए उन्हें दोषसिद्ध होने पर दण्डादिष्ट किया जा सकता था, इसी प्रकार की जानकारी देते हुए शपथपत्र फाइल करेगी, क्योंकि हमने इसी प्रकार के निदेश तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने निर्णय में भी इन विचारणाधीन कैदियों के सम्बन्ध में दिए थे।

6. हम यह बता देना चाहते हैं कि हमारे द्वारा तारीख 9 मार्च, 1979 वाले अपने निर्णय में अधिकथित विधि के अनुसार ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति को, जो दरिद्रता, निर्धनता या सम्पर्कवर्जित स्थिति जैसे कारणों से वकील रखने में और विधिक सेवाएं प्राप्त करने में असमर्थ है, राज्य द्वारा निःशुल्क विधि सेवाओं की व्यवस्था करवाने का सांविधानिक अधिकार है और राज्य को यह सांविधानिक परमादेश है कि वह, यदि न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित हो तो, ऐसे अभियुक्त व्यक्ति के लिए वकील की व्यवस्था करे। हमें इस बात का पता नहीं है कि राज्य सरकार ने ऐसे व्यक्तियों के लिए जिन पर ऐसे अपराधों का आरोप है जिनमें स्वाधीनता का वंचन सम्भव है और जो दरिद्रता या निर्धनता के कारण वकील रखने में असमर्थ हैं, निःशुल्क विधिक सेवाओं की व्यवस्था करने के प्रयोजन से किसी तन्त्र की स्थापना की है या नहीं। इस सांविधानिक बाध्यता की पूर्ति और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि संविधान के अधिनियमन की तारीख से 30 वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं और किसी भी राज्य सरकार के लिए संविधान के इस समादेश का पालन न करने के लिए बहाना बना सकना सम्भव नहीं है। हम इस मताभिव्यक्ति को प्रस्तुत निर्णय में इसलिए पुनः दोहरा रहे हैं क्योंकि हम यह पाते हैं कि कुछ राज्य सरकारों को

1979(4) eILR(PAT) SC 1

छोड़कर अनेक राज्य सरकारें दाण्डिक न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में निःशुल्क विधिक सेवाओं का उपबन्ध करने के मामले में अपने सांविधानिक दायित्व के प्रति सजग प्रतीत नहीं होतीं। यह नहीं भूलना चाहिए कि विधि केवल न्याय की बात कहने के लिए नहीं होती, बल्कि न्याय प्रदान करने के लिए भी होती है और विधिक सहायता इसके लिए आत्यांतिक आवश्यकता है। विधिक सहायता वास्तव में व्यावहारिक रूप से समान न्याय ही है। वास्तव में विधिक सहायता सामाजिक न्याय प्रदान करने की पद्धति है। इसका आशय उस जनसाधारण तक न्याय पहुंचाना है जो, जैसा कि कवि ने कहा है:—

> "सदियों के बोझ से दबा हुआ कुदाली पर झुककर भूमि की ओर देखता है, अपने चेहरे पर युगों का खोखलापन ओढ़े है और अपनी पीठ पर विश्व का भार लिए है।"

हमें आशा और विश्वास है कि प्रत्येक राज्य सरकार ऐसे प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति को, जिसे अपनी स्वाधीनता खोने की जोखिम है और जो दरिद्रता या निर्धनता के कारण वकील की मार्फत अपना बचाव करने में असमर्थ है, ऐसे मामलों में निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था करने की अपनी सांविधानिक बाध्यता का पालन करने के लिए तत्काल कदम उठाएगी जिनमें न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित है। यदि ऐसे अभियुक्त के लिए निःशुल्क विधिक सेवा की व्यवस्था नहीं की जाती, तो स्वयं विचारण में अनुच्छेद 21 के उल्लंघन का दोष होने की जोखिम हो सकती है और हमें इस बात में सन्देह नहीं है कि प्रत्येक राज्य सरकार ऐसी सम्भावना को टालने का प्रयास करेगी।

7. हमारे पास राज्य सरकार की इस बारे में रिपोर्ट नहीं है कि जिन स्त्रियों को 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' के अधीन जेलों में रखा गया था, उन्हें समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित प्रतिप्रेषण या कल्याण केन्द्रों में अन्तरित कर दिया गया है या नहीं, जैसा कि हमने 26 फरवरी, 1979 वाले अपने आदेश में निदेश दिया था। श्री यू० पी० सिंह ने बिहार राज्य की ओर से हमारे समक्ष कहा है कि राज्य सरकार ने इस निदेश का पालन किया है, किन्तु हम राज्य सरकार के किसी उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकारी का शपथपत्र लेना चाहेंगे, जिसमें यह कहा गया हो कि जिन स्त्रियों को 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' के बहाने जेल में रखा गया था उन्हें कल्याण केन्द्रों में अन्तरित कर दिया गया है और राज्य सरकार द्वारा इस आशय के आवश्यक निदेश दे दिए गए हैं कि ऐसी स्त्रियों या बच्चों को जो

अपराध के शिकार हुए हों या जिनकी उपस्थिति साक्ष्य देने के लिए आवश्यक हो, उन्हें तथाकथित 'संरक्षात्मक अभिरक्षा' में नहीं रखा जाना चाहिए। राज्य सरकार ऐसा शपथपत्र आज से 10 दिन के भीतर फाइल करे।

8. हमने अपने तारीख 26 फरवरी, 1979 वाले आदेश में यह निदेश दिया था कि राज्य सरकार को ऐसे मामलों की जिनमें विचारणाधीन कैदियों के विरुद्ध आरोपित अपराध समन मामलों के रूप में विचारणीय हैं, यह अभिनिश्चय करने के प्रयोजन से जांच करनी चाहिए कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 की उपधारा (5) में अधिनियमित उपबन्ध का अनुपालन किया गया है या नहीं। इस उपबन्ध से यह स्पष्ट है कि यदि मजिस्ट्रेट ने समन मामलों के रूप में विचारणीय मामले में अन्वेषण उस तारीख से छह मास की कालावधि के भीतर पूरा नहीं किया जिसको अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था, तो मजिस्ट्रेट को अपराध का उस दशा में के सिवाय आगे अन्वेषण रोकने का आदेश दे देना चाहिए, जिसमें कि अन्वेषण करने वाला अधिकारी मजिस्ट्रेट का यह समाधान कर देता है कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि के पश्चात् अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है। इस उपबन्ध के अनुपालन को सुनिश्चित करने की दृष्टि से हमने निदेश दिया था कि यदि मजिस्ट्रेट द्वारा समन मामले के रूप में विचारणीय किसी मामले में यह पाया जाए कि अन्वेषण मजिस्ट्रेट का यह समाधान किए बिना ही छह मास से अधिक कालावधि के लिए चलता रहा है, कि विशेष कारणों से और न्याय के हित में छह मास की कालावधि के बाद भी अन्वेषण जारी रखना आवश्यक है, तो राज्य सरकार विचारणाधीन कैदी को तब के सिवाय उन्मोचित कर देगी जब कि एक माह की कालावधि के भीतर मजिस्ट्रेट से आवश्यक आदेश प्राप्त कर लिए गए हैं। यह निदेश देने का कारण यह था कि ऐसे मामले में मजिस्ट्रेट और आगे अन्वेषण रोकने का आदेश देने के लिए आबद्ध है और उस हालत में केवल दो विकल्प रह जायेंगे, अर्थात्, यदि उस समय तक किए गए अन्वेषण से ऐसी कार्यवाही अपेक्षित हो, तो पुलिस तत्काल आरोपपत्र फाइल करने के लिए अग्रसर होगी या यदि अन्वेषण द्वारा विचारणाधीन कैदी के विरुद्ध कार्यवाही करने का कोई मामला प्रकट नहीं होता, तो विचारणाधीन कैदी को तत्काल निरोध से उन्मोचित कर दिया जाएगा। राज्य सरकार ने इस निदेश के अनुपालन में हमारे समक्ष कोई रिपोर्ट फाइल नहीं की है और इसलिए हम राज्य सरकार से अपेक्षा करते हैं कि वह आज से 10 दिन की कालावधि के भीतर ऐसा करे। हम उच्च न्यायालय से भी प्रार्थना करते हैं कि वह मजिस्ट्रेटों का ध्यान

धारा 167 की उपधारा (5) के उपबन्धों की ओर दिलाए और मजिस्ट्रेटों द्वारा इस उपबन्ध की अपेक्षा के अनुपालन को सुनिश्चित करे।

9. हम यह पाते हैं कि हमने तारीख 9 मार्च, 1979 को जो आदेश किया था उसमें दिए गए निदेश के अनुसरण में पटना उच्च न्यायालय ने हमें एक संकलन भेजा है जिसमें बिहार राज्य में मजिस्ट्रेटों के न्यायालय और सेशन न्यायालयों की अवस्थितियों की विशिष्टियां हैं और उसके साथ इन न्यायालयों में से प्रत्येक में 31 दिसम्बर, 1978 को लम्बित मामलों की कुल संख्या दी गई है तथा ऐसे लम्बित मामलों के वर्ष-प्रति-वर्ष के आंकड़े हैं और संक्षेप में वे कारण बताए गए हैं जिनकी वजह से इन मामलों को युक्तियुक्त कालावधि के भीतर निपटाना सम्भव नहीं हुआ है। संकलन में दिए गए लम्बित मामलों के आंकड़े दुःखद हैं और यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि इन मामलों में बहुत से पांच वर्ष से भी अधिक समय से लम्बित हैं और कुछ मामलों में यह कालावधि बढ़कर सात, नौ या दस वर्ष भी हो गई है। हम इतनी लम्बी कालावधियों से इतनी बड़ी संख्या में मामलों के लम्बित रहने से उत्पन्न स्थिति की जांच रिट पिटीशन की अगली सुनवाई पर यह विचार करने की दृष्टि से करेंगे कि अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण के मूल अधिकार के प्रवर्तन को सुनिश्चित करने के प्रयोजन से सक्रिय कार्यवाही के रूप में राज्य सरकार को क्या निदेश दिए जाने आवश्यक हैं। तथापि, हमें इस प्रयोजन के लिए पटना उच्च न्यायालय से बिहार राज्य में मजिस्ट्रेटों के सेशन न्यायालयों के विभिन्न प्रवर्गों के लिए उच्च न्यायालय द्वारा नियत किए गए निपटारे के आदर्शों की जानकारी की आवश्यकता है, क्योंकि इस जानकारी के बिना हमारे लिए यह विनिश्चय करना सम्भव नहीं है कि बिहार राज्य में न्यायालयों और न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या अभियुक्त के शीघ्रता से विचारण को सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए पर्याप्त है या न्यायालयों और न्यायाधीशों की अतिरिक्त संख्या आवश्यक है। हम उच्च न्यायालय से निवेदन करते हैं कि वह रिट पिटीशन की अगली सुनवाई पर हमें यह अतिरिक्त जानकारी भेजे।

10. हम रिट पिटीशन की आगे सुनवाई 24 अप्रैल, 1979 को करेंगे।

तदनुसार आदेश दिया गया।

श्या०/श्री०